REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

अष्टछाप के कवि परमानन्द दास जी के काव्य में पुष्टिमार्गीय अष्टयाम सेवा की अभिव्यक्ति

करुणेश उपाध्याय
शोधार्थी (हिन्दी साहित्य) , डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा.

शोध सारांश –

प्रस्तुत शोध पत्र में पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्य श्री वल्लभ ने गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मंदिर की स्थापना एवं भगवान श्रीनाथ जी की मूर्ति प्रतिष्ठा की और उनकी कीर्तन सेवा के लिए अपने शिष्यों की नियुक्ति की। ये शिष्य थे–कुंभनदास, परमानंद दास, सूरदास और कृष्णदास। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के बाद उनके पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी ने अष्टयाम सेवा व्यवस्थित की। जैसे कि मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या और शयन। इन अष्टयाम सेवा में कीर्तन हेतु उपरोक्त चार शिष्यों के साथ अपने चार शिष्य–चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, और नंददास को मिलाकर अष्टछाप की स्थापना की । इन सभी कवियों के लगभग सभी ओसरे के पद प्राप्त होते हैं। इस शोध पत्र में परमानन्द दास के अष्टयाम सेवा के पदों का एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

जीवन परिचय–

परमानन्द दास जी कन्नौज के रहने वाले कन्नौजिया ब्राह्मण थे। उनका जन्म मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सं0 1550 में कन्नौज में हुआ था।[1] इनके पिता कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। वे पूजा, पाठ और दान आदि से अपने परिवार का जीवन यापन करते थे। एक बार कन्नौज में भयंकर अकाल पड़ा। यहाँ के शासक ने परमानन्द दास जी के पिता का सब कुछ ले लिया। इससे वे दुखी हो गये। उनके पिता ने परमानन्द जी से कहा –'मैं तो अभी तुम्हारा विवाह भी नहीं कर पाया कि यह विपत्ति आ गई अब हम लोगों को बहुत सा द्रव्य एकत्रित करना चाहिए ताकि तुम्हारा विवाह हो सके।" तब परमानन्द जी ने कहा–"आप मेरे विवाह की चिंता न कीजिए, क्योंकि मुझे विवाह नहीं करना है।" ऐसा कहकर वे साधु सेवा एवं कीर्तन में निमग्न रहने लगे।

श्री गोकुल नाथ जी के ग्रन्थ 'अष्टछाप' के अनुसार परमानन्द दास जी कन्नौज से प्रयाग पधारे। उनके उत्तम कीर्तन–गायन की कीर्ति महाप्रभु वल्लभाचार्य तक पहुँच चुकी थी। सवंत् 1576 में जब उनकी आयु छब्बीस वर्ष थी तब मकर संक्रान्ती के अवसर पर कन्नौज से प्रयाग गये थे।[2] परमानन्द जी को ज्ञात हुआ कि यमुना के दूसरी ओर अड़ैल नामक गाँव में महाप्रभु वल्लभाचार्य का निवास है। उनको स्वप्न में वल्लभाचार्य जी के पास जाने की प्रेरणा की हुई। वे प्रातः काल नित्य कर्म से निवृत्त होकर वल्लभाचार्य जी के दर्शनार्थ अड़ैल पहुँच गये। वल्लभाचार्य जी ने उन्हें भगवद्–यश वर्णन करने को कहा, जिस पर उन्होंने निम्न पद गाया–

जिय की साध जिय ही रही री।
बहुरि गोपाल देखन नहीं पाए,
बिलपत कुँज अहीरी।।
एक दिन सो जु सखी इहि मारग,
बेचन जात दही री।

प्रीति के दिन दान मिस मोहन, मेरी बाँह गही री।।
बिनु देखें छिनु जात कलप सम, बिरहा अनल दही री।
'परमानन्द स्वामी' बिन दरसन, नैंनन नीर बही री।।

तब बल्लभाचार्य जी ने इनको श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनायी। इस प्रकार सं0 1577 विक्रमी को ज्येष्ठ शुक्ल द्वादस को महाप्रभु बल्लभाचार्य से दीक्षा ली,[3] उनका शिष्यत्व ग्रहण कर पुष्टिमार्ग में प्रवेश किया।

'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'भाव प्रकाश' से ज्ञात होता है कि पुष्टिमार्ग में दीक्षा लेने के पूर्व ही वे काव्य और संगीत निष्णात हो गये थे और ख्याति प्राप्त कर चुके थे। वार्ता के अनुसार वे अविवाहित और युवावस्था में ही विरक्त हो गये थे। पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के बाद वे गोवर्धन आ गये और उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन श्री नाथजी की भक्ति और उनके कीर्तन में लगा दिया। गोवर्धन के निकट ही सुरभि कुण्ड पर अपना निवास बनाकर आजीवन निवास किया। वार्ता के अनुसार उनका देहावसान जन्माष्टमी के दूसरे दिन सुरभि कुण्ड पर सं0 1641 विक्रमी को हुआ था।[4]

'सूर सागर' की ही तरह 'परमानन्द सागर' में भी हजारों पदों की चर्चा मिलती है। सूर काव्य की भाँति पमरानन्द का काव्य भी उच्चकोटि के काव्य–सौन्दर्य से मंडित है। उन्होंने नवनीतप्रिया और श्रीनाथजी के कीर्तन से सम्बद्ध सहस्त्रों पदों की रचना की थी। उनके परम धाम गमन के अवसर पर विट्ठलनाथ जी ने कहा था कि "दोनों सागर नहीं रहे' अर्थात् सूरसागर और परमानन्द सागर दोनों के रचयिता परम पद को प्राप्त हुए।

परमानन्द दास जी के काव्य, कीर्तन और भक्ति की प्रशंसा श्रीविट्ठलनाथजी, गोकुलनाथ जी और हरिराय जी तीनों ने की है। वार्ता के अनुसार श्री गुँसाई जी अष्ट सखा भक्तों में इन्हीं दो (सूरदास और परमानन्द दास) को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। क्योंकि इन्होंने कृष्ण की सम्पूर्ण लीलाओं का गान सबसे अधिक मार्मिक शब्दों में किया था।

पुष्टि मार्गीय अष्टयाम सेवा विधि और परमानन्ददासजी के पद –

पुष्टि मार्गीय सम्प्रदाय में सेवा का विशेष महत्व है क्योंकि सेवाविधि सम्प्रदाय की अपनी मौलिक विशेषता है। सिद्धान्त मुक्तावली में आचार्य जी ने लिखा है – "कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परामता' अर्थात् कृष्ण की सदा सेवा करनी चाहिए, यह सेवा मानसी होनी चाहिए, जो परा–फलस्वरूपा है। दूसरे श्लोक में आचार्य जी ने सेवा का स्वरूप बताया है, 'चेतनस्तत्प्रवणं सेवा' अर्थात् हरि में हा चित का पिरोना ही सेवा है। यह सेवा मन के साथ तन तथा धन से भी करना चाहिए। पुष्टि मार्गीय भक्त को शुद्ध सेवा भाव से भगवान के पूजनोत्सवादि में सम्मिलित रहना चाहिए। उनके 'सेवाफल' नामक ग्रंथ में सेवा के तीन फल बताए हैं। तात्पर्य है कि सेवा भावना के कारण फल तीन प्रकार के होते हैं। अतः जो जिस भाव से सेवा करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा।

श्री गोवर्धन नाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'कविवर परमानंद दास और वल्लभ सम्प्रदाय' में सेवा दो प्रकार की बताई है – नाम सेवा और स्वरूप सेवा। स्वरूप सेवा के तीन भेद बताए गए हैं – तनुजा, वित्तजा और मानसी। मानसी सेवा के भी दो भेद बताए गये हैं– मर्यादा मार्गीय सेवा और पुष्टिमार्गीय सेवा।

मर्यादा मार्गीय सेवा के लिए शास्त्रोक्त गम्भीर ज्ञान की आवश्यकता होती है। इस मार्ग पर चले वाला नाना क्लेश पाता हुआ पहले आत्म ज्ञान प्राप्ति करता है। फिर लोकार्थी के रूप में भगवान कृष्ण की सेवा करता हुआ अपने अहंकार ममता आदि को नष्ट कर देता है तब वहाँ उसे इच्छित फल की प्राप्ति होती है। इसमें भी भक्त को भगवान के अनुग्रह की कामना रहती है। इन दोनों मार्गों का एक ही फल है। किन्तु पुष्टिमार्ग (भक्तिमार्ग), मर्यादा मार्ग (ज्ञान मार्ग) की अपेक्षा अधिक सुगम और प्रशस्त है। आचार्य जी भक्तिमार्ग के समर्थक होते हुए भी ज्ञान मार्ग के विरोधी नहीं थे। पुष्टि सम्प्रदाय की सेवा का अभिप्राय साधारण उपासना अथवा नहीं समझना चाहिए। साधारण पूजा में कर्मकांड की प्रधानता होती है किन्तु पुष्टि सम्प्रदाय में सेवा में भावना प्रधान रहती है।

वल्लभाचार्य जी ने सेवा विधि पर कोई स्वतन्त्र ग्रथ नही लिखा है। सेवा विधि को पूर्ण व्यवस्थित करने कार्य गो0 विट्ठलनाथ जी ने किया। आचार्य जी के समय में श्रीनाथ की सेवा विधि साधारण थी। श्रृंगार केवल मात्र फेंटा तथा मुकुट के द्वारा ही होता था। विट्ठलनाथ जी ने आठ श्रृंगारों की व्यवस्था की–पाग, फेंटा, दुमाला, पगा, कुल्हे, सेहरा, टिपारा तथा मुकुट। इसके साथ–साथ वस्त्राभूषणों की व्यवस्था की गई थी। अनेक

उत्सव भी प्रचलित हुए, जिनमें श्री नाथजी की झांकी कराई जाती थी। श्रृंगार और भोग के अलावा राग सेवा की भी व्यवस्था की गई थी। ऋतु एवं समयानुसार आठों झांकियों में कीर्तन की भी व्यवस्था जिससे अष्टछाप स्थापित हुआ। विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप के आठों कवियों को ठाकुर जी को आठ सखाओं के रूप में माना और आठों झांकियों में कीर्तन सेवा करने का आदेश दिया। इस सेवा का क्रम इस प्रकार है–

मंगला –	स्मरण भक्ति	नवनीत प्रिया	परमानन्द	तोक	चन्द्रभागा
श्रृंगार –	कीर्तन भक्ति	चन्द्रमाजी	नन्ददास	भोज	चित्रलेखा
अपरस के–	अर्चन भक्ति	भोग	ग्वाल के पूर्व		
ग्वाल–	आत्मनिवेदन	भक्ति द्वारकानाथ जी	गोविन्दस्वामी	श्रीदामा	भामा
राजभोग–	वन्दन भक्ति	गोवर्द्धन (श्रीजी)	कुंभनदास	अर्जुन	विशाखा
उत्थापन–	श्रवण भक्ति	मथुरानाथ जी	सूरदास	कृष्णा	चम्पकलता
भोग	दास्य भक्ति	गोकुलनाथजी	चतुर्भुजदास	सुबाहु	सुशीला
आरती–	सख्य भक्ति	विट्ठलनाथजी	छीत स्वामी	सुबल	पद्मा
शयन–	पाद सेवन भक्ति	मदन मोहन जी	कृष्णदास	ऋषभ	ललिता[5]

पुष्टिमार्गीय सेवा के दो क्रम हैं – प्रथम प्रातः काल से शयन पर्यन्त की नित्य सेवा विधि और दूसरी वर्षोत्सव सेवा विधि। नित्य सेवा विधि में वात्सल्य भाव की प्रधानता है। इस सेवा में आठ समय निश्चित किये गये हैं – मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या, आरती और शयन। पुष्टिमार्गीय के कई घरों में दर्शन इससे कम होकर छः या चार अथवा आठ भी होते हैं। श्री जी के उत्सवों में कभी कम या ज्यादा भी होते रहते हैं। इन उत्सवों की भावना भी भिन्न रहती है। उपरोक्त वर्णित आठ या नौ दर्शनों की स्वरूप भावना श्रीमद्भागवत के आधार पर प्रचलित या स्थापित की गई है। इस नित्य सेवा का विवरण इस प्रकार है –

मंगला – इस सेवा की भावना यह है कि ब्रज कविताएं कुसुम मालाएं गूंथकर प्रातः श्रीकृष्ण के जागने की प्रतीक्षा में नंदभवन में आ जाती है। यशौदा मैया जब कृष्ण को जगाती है तो उनका मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो सागर मंथन के फेन के मध्य चन्द्रमा प्रकट हुआ हो।

जगाइवे को पद –

सीतल खरन बाहु भुज बल में जमुना तीर गोकुल ब्रन महीयाँ।
सीतल पान खरी सुध चरनन, नित्य दूध जरी अति जतन कहीयाँ।।
गोवर्धन अरू वृन्दावन तरुवर सीतल छैयां।
जन घूमत दधि मथना सीतल, पीवत गोरस को धैयां।।
सोवत तें जागत मनमोहन अँखियाँ सीतल करत कन्हैयाँ।
गोपी जन नैनन के भागन सीत बसो ब्रज हलधर भैया।।
निरख सीतल ब्रजवास निरख मुख मंगल मूरत जसोदा मैया।
'परमानन्द' सीतल सरसाने, बदन कमल की लेत बलैया।।[6]

प्रातःकाल श्री कृष्ण के जागने के बाद उनको मक्खन, मिश्री, दूध, मलाई आदि दिया जाता है। इसे कलेऊ भोग कहते हैं। वे कुछ खाते हैं, कुछ गिराते हैं, कुछ मुख में लपेट लेते हैं –

कलेऊ का पद –

उठत प्रात कछु मात जसोदा मंगल भोग देत दोउ छोरा।
माखन मिसुरी दह्यो मलाई दूध भरे दोउ कनक कटोरा।।
कछुक खात कछु मुख लपटावत देत दुराय मिलि करत निहोरा।
'परमानन्द' प्रभु झबक परत दृग भरत लाल भुज करत कलोला।।[7]

भोग के बाद श्री कृष्ण की मंगला आरती की जाती है।

मंगला आरती का पद–

मंगल आरती कर मन मोर।
परम निशा बीतो भयो भोर।।
मंगल बाजत झालर ताल।
मंगल रूप उठे नंदलाल।।
मंगल धूप दीप कर जोर।
मंगल सब गावत ओर।।
मंगल उदयो मंगल रास।
मंगल बल 'परमानन्ददास'[8]।।

श्रृंगार – श्रीकृष्ण को ऋतुनुसार ऊष्ण एवं शीतल जल से जसोदा मैया स्नान कराती है। वे नहाने में आनाकानी करते हैं, मैया जसोदा उन्हें तरह–तरह से बहलाती है। स्नान करने के पश्चात् मैया चित्र विचित्र वस्त्राभूषणों से उनका श्रृंगार करती है।

श्रृंगार का पद – सुन्दर ढोटा कोन को सुन्दर मृदु बानी।

सुन्दर भाल तिलक दिये सुन्दर मुसकानी।।
सुन्दर नयनन हरि लियो कमल को पानी।
सुन्दरता तिहुँ लोक की लै ब्रज में आनी।।
भेद बतायो ग्वालिन सब जायो नंद रानी।
परमानन्द जसोमति सब सुख पलटानी।।[9]

ग्वाल – ग्वाल की भावना में कृष्ण की बाल क्रीड़ा होती है। इसमें वे अपने बाल सखाओं के साथ खेलते हैं। वे कभी छत पर पतंग उड़ाते है तो कभी चकडोरा खेल कर गोपियों के मन को नचाते हैं।

ग्वाल का पद –

गोपाल फिरावत है वंगी।
भीतर भवन मेरे सब बालक बाना विधि कछु रंगी।
सहज सुभाष डोरी खेंचत है लेत उठाय किरये संगी।।
कबहुंक कर ले स्त्रवन सुनावत नाना भांति अधिक सुरंगी।।
कबहुंक डार देत हैं पथ में मुखहि बजावत संगी।[10]
'परमानन्द स्वामी' मन मोहन खेल सयों चलै सब संगी।

राजभोग – ग्वाल के बाद श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ गोचारण के लिए चले जाते हैं। यशोदा मैया श्री जी के द्वारा मध्यान्ह का भोजन वन में भेजती है। इसमें भांति भांति के व्यंजन होते हैं। श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ मिल–बाँट कर भोजन करते हैं। इसे ही राजभोग कहते हैं। डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'परमा नंद दास और वल्लभ सम्प्रदाय' में राजभोग के तीन प्रकार बताए हैं – नन्द यशोद के गृह में भोजन, ब्रजसुन्दरियों द्वारा लाया गया भोजन (छाक) अथवा निमंत्रण (कुनवारा) तथा वन में भोजन।

राजभोग का पद –

बांट–बांट सबहिन कों देत।
ऐसे ग्वाल हरि को जो भावत सेस रहत सो आपुन लेत।।

आधो दूध सब धौरी को ओटि जमायौ अपने हाथ।
हंडिया मूंद यशोदा मैया तुको दै पठई ब्रजनाथ।।
आनंद मगन फिरत अपने रंग वृन्दावन कालिन्दी तीर।
'परमानंद दास' झूठो लैबे बांह पसारि दियों बलवीर।।[11]

उत्थापन – भोजनोपरान्त कृष्ण दोपहर में विश्राम करते हैं। इस विश्राम से जगाना ही उत्थापन कहलाता है। इसमें भगवान को फलों का भोग लगाया जाता है। फलों का भोग ग्रहण करने के बाद श्री कृष्ण नंदगृह वापस लौटने हेतु वंशी वादन द्वारा गायों को एकत्र करते हैं। घर लौटते समय इनका गो रज से मंडित रूप देखने के लिए गोपियाँ अपने धरों के दरवाजे पर खड़ी हो जाती है।

उत्थापन (आवनी) का पद –

देखो गोपाल की आवनि।
आवन्त मन फावनि।।
कमल नयन स्याम सुन्दर मूरतिमन भावनि।
कहा मुकुट दास गुंजामनि।।
भैख विचित्र बनावनि।
'परमानन्द स्वामी' गोपाल के अंग अंग नचावनि।।[12]

भोग (ब्यालू) – घर आने पर कृष्ण कुछ समय खेलने कूदने के पश्चात् संध्या भोग अर्पित किया जाता है, इसे ब्यालू कहते हैं। कृष्ण को देखने नंदद्वार पर गोपियों की भीड़ एकत्र हो जाती है। कृष्ण अपने सखाओं के साथ यह भोग ग्रहण करते हैं।

ब्यालू भोग का पद –

बियारु करत है बलवीर ।
आस पास सब सखा मंडली सुबल सखा मति धीर।।
मधु मेवा पकवान मिठाई औरि सिरायो क्षीर।
हंसत परस्पर खात खबाबत झपट लेत कर चीर।।
यह सुख निरखा नंदरानी प्रफुलित अधिक सरीर।
'परमानन्द दास' को ठाकुर झात हेत अवतीर।।[13]

संध्या आरती – भोजनोपरान्त श्री कृष्ण की संध्या आरती का समय हो जाता है। इस समय मंदिर में काफी चहल पहल रहती है। रत्न जड़ित कंचन थार में अगरु, चंदन आदि मिलाकर दीपक प्रज्जवलित किया जाता है फिर आरती उतारी जाती है।

संध्या आरती का पद –

आरती युगल किशोर की कीजै।
तन मन धन न्यौछावर दीजै।।
गौर स्याम मुख निरखत जीजै।
प्रेम स्वरूप नयनन भर पीजै।।
रवि सारी कोटि बदन की शोभा।
ताहि देखत मेरो मन लोभा।।
फूलन की सेज फूलन गजमाला।
रतन सिंहासन बैठे नंदलाला।।
मोर मुकुट कर मुरली सोहे।

नटवर भेस निरख मन मोहैं।।
ओढ़े नील पीट पट साड़ी।
कुंजन ललना लाल बिहारी।।
स्त्री पुरुषोत्तम गिरिवर धारी।
'परमानन्द स्वामी' अविचल जोरी।।[14]

शयन – रात्रि होने पर श्री कृष्ण के शयन का समय हो जाता है। इसमें यशोदा मैया उनको सुलाने के लिए पलंग बिछा कर उस पर उन्हें लिटा देती हैं और उन्हें थपका कर सुलाती हैं।

शयन का पद –

माई री चित्त चोर चोरत आलीरी बाँके लोचन नीके।
यहै मूरत रेहत नयनन में लाल भावते जिय के।।
एक बार मुसकाय चले जब हिरदे गढ़े गुन पीके।।
'परमानन्द' कोऊ आन मिलाऔ पौढ़ बतरस या तीके।।[15]

निष्कर्ष –

परमान्द दास जी के अष्टयाम सेवा विधि के पदों में उनकी भक्ति की झलक मिलती है। पदों में जो भाव की चमक है, सरल एव कोमल शब्दों में जो अभिव्यक्ति है तथा चित्र वर्णन की जो कलात्मकता है, यह सब स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनका भाव सागर उनके पदों में लहराता है तथा पुष्टिमार्गीय अष्टयाम सेवा का स्पष्ट संकेत भी प्राप्त होता है।

संदर्भ –

1 अष्टछापीय भक्ति, काव्य और संगीत के रसस्त्रोत महाकवि परमानन्द, परमानन्द दासः जीवनी और कृतित्व, डा. पुष्पा चौरसिया, सं0 भगवती प्रसाद देवपुरा, साहित्य मंडल, श्रीनाथ द्वारा, पृ0सं0 26
2 अष्टछापीय, भक्ति काव्य और संगीत के रसस्त्रोत, महाकवि परमानन्द दास, परमानन्द दास का पुष्टिमार्ग में प्रवेश, देवकीनंदन कुम्हेरिया, सं0 भगवती प्रसाद देवपुरा साहित्य मण्डल, नाथद्वारा, पृ0सं0 36
3 वही, पृ0 सं0 36
4 अष्टछापीय, भक्ति काव्य और संगीत के रसस्त्रोत, महाकवि परमानन्द दास, परमानन्द दास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डा. पुष्पा चौरसिया, सं0 भगवती प्रसाद देवपुरा साहित्य मण्डल, नाथद्वारा, पृ0सं0 29
5 श्रीनाथ – सेवा – रसोर्दधि, ले0 कविरत्न बागरोदी बल्देव शर्मा 'सत्य', प्र0 श्रीमती रुकमणिबाई बल्लभदासकाराणी, रुकमणी निवास, अन्धेरी, मुम्बई, पृ.सं. 5
6 अष्टछापीय भक्ति, काव्य और संगीत के रसस्रोत महाकवि परमानन्द, कीर्तन काव्य खण्ड, जगावनो, सं0 भगवती प्रसाद देवपुरा प्र0 साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा, पृ0सं0 347।
7 वही, कलेऊ, पृ0 सं0 348
8 परमानन्द सागर : सं0 डा0 गोवर्धननाथ शुक्ल, पद संख्या 590
9 वही, पद सं0 619
10 वही, पद सं0 625
11 वही, पद सं0 641
12 वही, पद सं0 655
13 वही, पद सं0 701
14 वही, पद सं0 678
15 वही, पद सं0 685

करुणेश उपाध्याय
शोधार्थी (हिन्दी साहित्य) , डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा.

LBP PUBLICATION